© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
IJSRST1845574 | Published : 25 March 2018 | Page : 606-610

लक्षणास्वरूप विमर्श

सुधा त्रिपाठी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

शोध आलेख सार – लक्षणा शक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में साहित्यशास्त्रियों पर दो दर्शनों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। लक्षणा के स्वरूप या लक्षण के विषय में प्राचीन नैयायिकों ने पृथक् विचार नहीं दिये है। लक्षणों से स्पष्ट है कि स्वरूप की दृष्टि से साहित्यिक सामान्यतः इसे शब्दप्यापाररूप मानते है। इस व्यापार को कुछ ज्ञानरूप स्वीकारते हैं तो कुछ सम्बन्धरूप।

मुख्य शब्द– लक्षणा, शक्ति, पूर्वमीमांसा, नैयायिक, न्यायसूत्र,शक्यसम्बन्धस्वरूपा, तात्पर्यस्वरूपा।

लक्षणा शक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि इस पर सर्वाधिक विचार साहित्यिकों द्वारा किया गय है तथापि ये विचार मौलिक नहीं है। लक्षणा शक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में साहित्यशास्त्रियों पर दो दर्शनों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। ये दर्शन हैं न्याय एवं पूर्वमीमांसा। अतः प्रकृत सन्दर्भ में सर्वप्रथम नैयायिकों के मतानुसार लक्षणा पर विचार किया जायेगा।

लक्षणा के स्वरूप या लक्षण के विषय में प्राचीन नैयायिकों ने पृथक् विचार नहीं दिये है, प्रसंगतः इस पर किचिंत विमर्श अवश्य हो गया है। इस विषय पर न्यायसूत्र के द्वितीय अध्याय में वर्णित 'उपचार'[1] से इसके लक्षण का निर्धारण किया जा सकता है। पंचमी विभक्ति का अर्थ अभेद लिए जाने पर 'उपचार' के सहचरणादि रूप होगें। तत्वचिन्तामणिकार आचार्य गंगेश के मत में वृत्ति के उपरान्त वाच्यार्थ की वाक्यार्थ में सम्बन्धानुपपत्ति होने पर सम्बन्धवशात् प्राप्त अन्वय को लक्षणा कहते हैं।[2] इसी लक्षण पर आगे विचार करते हुए कई लक्षणों को उद्धृत करते हुए आचार्य गंगेश का मत है कि शब्द के द्वारा परम्परा से अशक्य एवं असादृश्य के अन्वय में उपयोगी उपस्थिति ही लक्षणा है।[3] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वह अन्वयोपयोगी पदार्थ लक्षणा है, जिसमें यह उपस्थिति शब्दतः न होकर वाच्यार्थ को मध्यवर्ती बनाकर हो। उस लक्षणा का अनभिधेय होना एवं वाच्यार्थ से असादृश्य होना आवश्यक है। जगदीशतर्कालंकार के मत में जिस अर्थ के सम्बन्ध में जो नाम संकेतित हो, वह उस अर्थ के विषय में लक्षक कहलाता है यदि उस (लक्ष्य) अर्थ को बताने में शक्ति (संकेतित) शून्य हो।[4] यथा तीरादि सम्बन्ध में गंगा पद की शक्ति तीरादि अर्थ बताने में शून्य है तब तीरादि अर्थ का निरूपण करने वाली शक्ति लक्षणा होगी। कारिकावली के अनुसार शक्य अर्थात् मुख्य अर्थ को सम्बन्धी मानकर उसके साथ सम्बन्ध वाले अमुख्य अर्थ का बोध कराने वाली वृत्ति लक्षणा है और वह तात्पर्य की अनुपपत्ति से होती है।[5] यथा 'गंगायां घोषः' में प्रवाहरूप शक्यार्थ में घोष की अन्वय या तात्पर्य अनुपपत्ति

© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
IJSRST1845574 | Published : 25 March 2018 | Page : 606-610

का ज्ञान होता है, वहाँ लक्षणा से तट अर्थ को बोध होता है। उपर्युक्त मतों के अनुसार लक्षणा को शक्यसम्बन्धस्वरूपा, तात्पर्यस्वरूपा या अभिप्रायस्वरूपा माना जा सकता है, परन्तु तात्पर्य का लक्षणा के लिए विशेष उपयोग नहीं है, वह तो केवल उन्मेष स्वरूप है, यही स्थिति अभिप्राय की भी है। अतः सभी नैयायियों के मत में लक्षणा शक्यसम्बन्धरूपा है।[6]

वेदार्थनिर्णय में मीमांसक 'अभिधा' को ही महत्त्व प्रदान करते हैं। अभिधेयार्थ की प्राप्ति न होने पर अर्थोपलब्धि के अनेक उपाय हैं जो दोष संज्ञा वाले हैं। ''तत्र लक्षणैव हि दोषः'' वाक्य के अनुसार लक्षणा भी दोष ही है। मीमांसासूत्र के अनुसार शब्द के मुख्य एवं गुण (गौण) दो अर्थ होते हैं।[7] लक्षणा मीमांसकों के मत में शब्द का व्यापार है परन्तु यथासम्भव वेद मंत्रों की आयोजना अभिधा से ही की जानी चाहिए।[8] मीमांसा सूत्र एवं शाबरभाष्य दोनों में लक्षणा का लक्षण प्राप्त नहीं होता परन्तु कुमारिल भट्ट आदि मनीषियों ने शाबरभाष्य में उल्लिखित ''उत्पत्तिर्हि भाव उच्यते लक्षणया''[9] के अनुसार लक्षणा को विवेचित करने का प्रयास किया है।

आचार्य कुमारिल ने परार्थ प्राप्ति हेतु लक्षणा एवं गौणी नामक दो अलग–अलग वृत्तियाँ स्वीकार की हैं। आचार्य के मत में अभिधेय से सम्बन्धित अर्थ को बोध कराने वाली वृत्ति लक्षणा है जबकि लक्ष्यमाणवृत्ति के गुणों के योग की अपेक्षा करने के कारण वह गौणी कहलाती है।[10]

इस प्रकार गुणों के दर्शन पूर्वक दूसरे अर्थ का निर्वचन करने वाला शब्द गौण है, एवं यह वृत्ति गौणी है। यथा–गौर्वाहीकः में जाड्य मान्द्य आदि गुणों को देखकर वाहीक हेतु गो शब्द का प्रयोग। वाक्यार्थ का विचार मीमांसा का प्रमुख विचार है अतः भाट्टमीमांसक वाक्यार्थ को लक्ष्य स्वीकार करते हैं। कुमारिल भट्ट के अनुसार वाक्यार्थबोध हेतु पद प्रयुक्त होते हैं परन्तु पद वाक्यार्थ की साक्षात् प्रतीति न कराते हुए प्रथमतः पदार्थ का ज्ञान कराते हैं, तत्पश्चात् वाक्यार्थबोध। यह ठीक वैसे है जैसे पाकार्थ इन्धन प्रयुक्त होता है परन्तु वह ज्वाला उत्पन्न करके ही पाकक्रिया सम्पन्न करता है। यही स्थिति पद एवं वाक्यार्थ की भी है।[11] अतः पद पदार्थ का बोध कराता है एवं पदार्थ वाक्यार्थ का। इन अर्थों में सम्बन्ध नित्य है एवं सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति ही लक्षणा होगी जो निस्सन्देह ज्ञानस्वरूपा होगी। आचार्य नागेश ने भी मीमांसकों का मत बताते हुए कहा है कि ज्ञाप्यार्थ के साथ सम्बन्धज्ञान से उद्बुद्ध जो शक्ति विषयक संस्कार है उससे बोध होने में लक्षणा का व्यवहार होता है।[12] अतः लक्षणा का स्वरूप ज्ञाप्यसम्बन्ध है। ऐसा न होने पर 'गभीरायां नद्यां घोषः' इत्यादि स्थलों में वाक्य में शक्ति न होने से शक्यसम्बन्धरूपा लक्षणा असम्भव है।

अतः मीमांसकों के मत में लक्षणा ज्ञानस्वरूपा या ज्ञाप्यसम्बन्धस्वरूपा निश्चित होती है।

वैयाकरणों के प्राचीनतम् सिद्धान्तों में लक्षणावृत्ति का उल्लेख नहीं है क्योंकि प्राचीनों के मत में सभी शब्द सभी अर्थों का निरूपण कर सकते हैं। लोकव्यवहार जिस शब्द को जो अर्थ प्रदान कर देता है, जनसामान्य उसी अर्थ का व्यवहार करने लगता है। भर्तृहरि के मत में एक शब्द अनेक अर्थों का प्रकटीकरण करता है। पृथक्–पृथक् निमित्त से एक ही शब्द सभी अर्थों को प्रकट कर सकता है।[13] यथा हरि शब्द सन्दर्भानुरोधेन 'विष्णु' का अर्थ देता है तो प्रसंगतः वह 'अश्य' या 'कपि' का भी अर्थ दे सकता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि शब्द में सर्वार्थवाचक शक्ति विद्यमान होती है जो प्रसिद्धि या अप्रसिद्धि के फलस्वरूप मुख्य या गौण होती है।[14] कौण्डभट्ट ने भी आचार्य भर्तृहरि के उपर्युक्त

© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
IJSRST1845574 | Published : 25 March 2018 | Page : 606-610

सिद्धान्त से मतैक्य प्रदर्शित किया है।[15] अतः प्राचीनों के मत में वाच्यवाचक भाव का निश्चय लोकव्यवहार करता है परन्तु लक्षणा के ज्ञानार्थ यह निश्चित नहीं है। अभिधा के प्रसिद्धा एवं अप्रसिद्धा भेद किये जा सकते हैं तथा लक्षणा अप्रसिद्धा अभिधा ही है।

पतंजलि ने यद्यपि लक्षणा का नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु लक्षणा के स्वरूप का निदर्शन महाभाष्य में निश्चित रूप से द्रष्टव्य है। ''पुंयोगादाख्यानम्'' के भाष्य के अवसर पर महाभाष्यकार ने शब्द के द्वितीय अर्थों के चार कारणों आधारधेय भाव या ताटस्थ्य, समान धर्म, सामीप्य एवं साहचर्य का उल्लेख किया है।[16] भर्तृहरि ने भी लक्षणा की सिद्धि का प्रयास नहीं किया है। काशिकावृत्ति में लक्षणा का न्यायसम्मत लक्षण प्राप्त होता है जिसके अनुसार मुख्यार्थ से सम्बन्ध वाले गुण विशेष के प्रतिपादन की प्रवृत्ति वाला व्यवहार लक्षणा है।[17] परवर्ती वैयाकरणों आचार्य कौण्डभट्ट एवं अप्पय दीक्षित[18] ने लक्षणा शब्द का प्रयोग लक्षणा के खण्डन के लिए ही किया है। अप्पय दीक्षित ने 'द्रोणो ब्रीहिः' में द्रोण शब्द का परिणामत्व उपचार से सिद्ध अर्थात् औपचारिक बताया है।[19] हरि दीक्षित ने द्रोणो ब्रीहिः में सिंहो माणवकः की भाँति लक्षणा स्वीकार करते हुए लक्षणा का स्वरूप 'शक्यतावच्छेदकारोप' बताया।[20] कालान्तर में महावैयाकरण नागेशभट्ट ने भी लक्षणा का यही रूप बताते हुए शक्यतावच्छेदकारोप सिद्धान्त को निश्चित किया जिसका प्रतिपादन प्रकृत प्रबन्ध में यथास्थान वर्णनीय है।

लक्षणा के सम्बन्ध में सर्वाधिक विचार–विमर्श साहित्याचार्यों ने किया है। लक्षणा की सत्ता के विषय में भी आलंकारिकों में पर्याप्त मतभेद है। लक्षणाविरोधियों के दो वर्ग माने जाते हैं संभाव्यवादी एवं अभाववादी। प्रथम मत को आचार्य अभिनव ने लोचन में व्यंजनाभाववादियों के पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार शब्दों का अर्थ संकेत सापेक्ष होता है जो किसी एक में ही हो सकता है, वह अभिधेय है, अतः लक्षणा की कोई आवश्यकता नहीं है। अभाववादियों के प्रमुख पक्षकार आचार्य महिमभट्ट एवं भट्टलोल्लट आदि हैं, प्रथम के मत में शब्द की एकमात्र शक्ति अभिधा ही है[21] तो द्वितीय के मत में एक ही अभिधा शक्ति तीनों कार्यों को करने वाले बाण की भाँति है।[22] परन्तु साहित्याचार्यों ने लक्षणा की सत्ता को बहुमत से स्वीकारते हुए इसके लक्षण स्वरूपादि पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।

लक्षणा शब्द का सर्वप्रथम साहित्यिक प्रयोग अग्निपुराण[23] में प्राप्त होता है परन्तु यह शब्दशक्तियों के प्रसंग में न होकर अलंकारों के प्रसंग में ही है। अलंकारिकों में भामह ने सर्वप्रथम लक्षणागर्भरूपक का उदाहरण दिया है।[24] उद्भट ने स्पष्टतः लक्षणा की चर्चा करते हुए कहा कि शब्दों के मुख्यव्यापार को अभिधा एवं दूसरे अमुख्य व्यापार को गुणवृत्ति कहते हैं।[25] आनन्दवर्धन ने लक्षणा को भक्ति शब्द से सम्बोधित किया है।[26] अभिनवगुप्त के मत में भक्ति[27] का अर्थ है सहृदय परम्परा में सहृदय सम्मत वह सम्बन्ध जिसकी अपेक्षा अन्यार्थ के प्रतिपादन में होती है। अभिनवगुप्त के अनुसार भक्ति में गौणी एवं लक्षणा दोनों सम्मिलित है।[28] आचार्य मुकुलभट्ट के मत में जो अर्थ, अर्थ के द्वारा जाना जाता है वह लक्ष्यमाण कहा जाता है।[29] उनके मत में 'गौरनुबन्ध्यः' वाक्य में गो शब्द का मुख्यार्थ या अभिधेयार्थ द्वारा अर्थ निकलता है, गो जाति परन्तु जाति ग्रहण का विषय न हो पाने से शब्द के द्वारा ज्ञात जाति के आश्रय अर्थात् व्यक्ति का आक्षेप किया जाता है। आक्षेप का कारण लक्षणा है।[30] इस लक्षणा को आचार्य ने सान्तरार्थनिष्ठ कहा है जो

© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
IJSRST1845574 | Published : 25 March 2018 | Page : 606-610

अभिधा का अमुख्य व्यापार है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर सर्वप्रथम आचार्य मम्मट ने लक्षणा के विषय में विशद् विचार किया। आचार्य के अनुसार मुख्यार्थ का बाध होने पर उससे सम्बद्ध रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर लक्षणा होती है एवं द्वितीय अर्थ लक्षणीय अर्थ कहलाता है।[31] काव्यप्रकाश में भी इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लक्षण को आरोपिता क्रिया कहा।[32] जयदेव के अनुसार मुख्यार्थ की विवक्षा में सम्बद्धार्थ की प्रतिपादिका शक्ति लक्षणा है जो रूढ़ि में पूर्वा एवं प्रयोजन में अर्वाचीन होती है।[33] शारदातनय[34] भी अभिधेयार्थ से सम्बद्ध अर्थ प्रतीति को लक्षणा कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ के मत में मुख्यार्थ का अन्वय अनुपपन्न होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजनवशात् मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ का ज्ञान जिस शक्ति से हो वह लक्षणा है।[35] विश्वनाथ के मत में यह शक्ति कल्पित ही है, स्वाभाविक नहीं। अप्पयदीक्षित लक्षणा को मुख्यार्थसम्बन्धवशात् होने वाली शब्द की प्रतिपादकता स्वीकारते हैं।[36] पण्डितराज जगन्नाथ का कथन है कि पद के शक्यार्थ का जिस किसी पदार्थ से जो सम्बन्ध होता है उसे लक्षणा कहते हैं।[37]

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से स्पष्ट है कि स्वरूप की दृष्टि से साहित्यिक सामान्यतः इसे शब्दप्यापाररूप मानते है। इस व्यापार को कुछ ज्ञानरूप स्वीकारते हैं तो कुछ सम्बन्धरूप।

सन्दर्भ सूची

1 सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामीप्ययोगसाधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमंचकटराजसक्तु चन्दनगंगेशकटान्नपुरुषेष्वतद्भावेऽपि तदुपचार।—न्यायसूत्र, 2/2/63

2 वाच्यार्थस्य वाक्यार्थे सम्बन्धानुपपत्तितः। तत् सम्बन्धवशप्राप्तस्यान्वयाल्लक्षणोच्यते।।— तत्त्वचिन्तामणि, लक्षणाप्रकरणम्, पृ0 660

3 शब्दात् परम्परयाशक्यासादृश्यान्वयपरोपस्थितिरूपा।—तत्त्वचिन्तामणि, पृ0 678

4 यादृशार्थस्य सम्बन्धवति शक्तन्तु यद्भवेत। तत्र तल्लक्षंक नाम तच्छक्तिविधुरं यदि।।— शब्दशक्तिप्रकाशिका, कारिका—24

5 लक्षणा शक्यसम्बन्धास्तात्पर्यानुपपत्तितः।—कारिकावली, कारिका, 82

6 सा च शक्यसम्बन्धरूपा। कारिकावली, कारिका 82, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, पृ0 36

7 गुणमुख्यविशेषणच्च।—मीमांसासूत्र, 10/01/10/39

8 भक्तिश्चान्याय्या मुख्ये सम्भवति।—शाबर भाष्य, 1/2/4, पृ0 1139

9 शा0भा0 1/1/5

10 अभिधेयाविनाभूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते। लक्ष्यमाणगुणैर्योगाद् वृत्तेरिष्टा तु गौणता।—तन्त्रवार्तिक 1/4/22

11 साक्षाद् यद्यपि कुर्वन्ति पदार्थप्रतिपादनम्। वर्णास्तथापि नैतस्मिन् पर्यवस्यन्ति निष्फले।।
वाक्यार्थमितये तेषां प्रवृत्तौ नान्तरीयकम्। पाके ज्वालेव काष्ठानां पदार्थप्रतिपादनम्।।—
श्लोकवार्तिक, वाक्याधिकरण कारिका 342—43

12 केचित्तु ज्ञाप्यसम्बन्धेनोद्बुद्धशक्तिसंस्कारतो बोधे लक्षणा।—लघुमंजूषा, पृ0 210

13 एकमाहुरनेकार्थं शब्दमन्ये परीक्षकाः। निमित्तभेदादेकस्य सार्वार्थ्यम् तस्य भिद्यते।।—वाक्यपदीय 2/250

14 सर्वशक्तेस्तु तस्यैव शब्दस्यानेकधर्मणः। प्रसिद्धिभेदात् गौणत्वं मुख्यत्वंचोपवर्ण्यते।।— वाक्यपदीय 2/253

15 एक माहुरनेकार्थ शब्दमन्ये केऽपि व्यवस्थितः।—वैयाकरणभूषणसार, पृ0 247

16 चतुर्भिः प्रकारैरेतस्मिन् स इत्येतद् भवति तात्स्थ्यात् ताद्धर्म्यात् तत्सामीप्यात् तत्सहचर्यादिति।— महाभाष्य 4/1/48

17 गौर्वाहीकः अग्निर्माणवकः यद्यप्यत्राग्निशब्दः गोशब्दश्चमुख्यार्थ सम्बन्धमवधृतमेतद्तैक्ष्ण्यजाड्या— दिकमर्थान्तरे गुणविशेषमेव प्रतिपादयितुं प्रवृत्तस्तथापि सर्वथागुणवचनो न भवतीति न द्विरुच्यते।—काशिका, पृ0 741

© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
IJSRST1845574 | Published : 25 March 2018 | Page : 606-610

18 अर्थशब्दो वृत्तिविषयपरः वृत्तिस्तु शक्तिर्लक्षणा च गौणी तु लक्षणान्तर्भूता पृथग्वास्तु। प्रौढ मनोरमा, पृ0 760

19 द्रोणो ब्रीहिरित्यपि द्रोणशब्दस्य तत्परिमिते उपचारात्सिद्धम, गौर्वाहीक इतिवत्—प्रौढ मनोरमा, पृ0 762

20 द्रोणोब्रीहिरिति तु सिंहो माणवक इतिवल्लक्षणया साधु। लक्षणा च शक्यतावच्छेदकाऽऽरोप एव। प्रौढ मनोरमा की शब्दरत्न टीका, पृ0 765

21 शब्दस्यैकयाभिधाशक्तिरर्थस्येकेवलिंगता।—व्यक्तिविवेक, पृ0 32

22 सोयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरो व्यापारः।—काव्यप्रकाश, विश्वेश्वर, पृ0 230

23 स्वाभिधेयस्खलद्वृत्तिरमुख्यार्थस्य वाचकः। यया शब्दो निमित्तेन केनचित् सौपचारिकी। सा च लाक्षणिकी गौणी लक्षणा गुणयोगतः।।—अग्निपुराण, अध्याय 345, श्लोक 9—10

24 उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य दृश्यते। गुणानां समतां दृष्टवा रूपकं नाम तद्विदुः।।—काव्यालंकार, द्वितीय परिच्छेद, कारिका पृ0 21

25 शब्दानामभिधा मुख्यो व्यापारो गुणवृत्तिश्च।—काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, पृ0 235

26 (i) भाक्तमाहुस्तमन्ये।—ध्वन्यालोक, कारिका 01
(ii) भक्त्या बिभर्ति नैकत्वं रूपभेदादयं ध्वनिः।—ध्वन्यालोक कारिका 14

27 भज्यते सेव्यते पदार्थेन प्रसिद्धतयोत्प्रेक्ष्यते इति भक्तिर्धर्मोऽभिधेयेन सामीप्यादिः। तत आगतो भाक्तो लाक्षणिकोऽर्थः।—ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत लोचन, पृ0 49

28 तत आगतो भाक्त इति गौणो लाक्षणिकश्च।—प्रथम उद्योत लोचन, पृ0 49

29 अर्थावसेयस्य पुनर्लक्ष्यमाणत्वमुच्यते।—अभिधावृत्तमातृका, कारिका 01

30 जातिस्तु व्यक्तिमन्तरेण यागसाधनभावं न प्रतिपद्यते इति शब्दप्रत्यायितजातिसामार्थ्यादत्र जातेराश्रयभूता व्यक्तिराक्षिप्यते। तेनासौ लाक्षणिकी।—अभिधावृत्तमातृका, पृ0 2—3

31 तद्बाधे रूढितोऽर्थाद् वा लक्षणीयस्तदन्वितः। शब्दव्यापारविचार, कारिका 01, पृ0 07

32 मुख्यार्थबाधे तद्योगे रुढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।—काव्य प्रकाश द्वितीय उल्लास कारिका 09

33 मुख्यार्थविवक्षायां पूर्वाऽर्वाची च रुढितः।
प्रययोजनाच्च सम्बद्धं वदन्ती लक्षणा मता।—चन्द्रालोक, मयूख 09, कारिका 01

34 अभिधेयाविनाभूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते।—भावप्रकाशनम्, षष्ठोऽधिकार

35 मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।।—साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद, कारिका 05

36 सा च मुख्यार्थसम्बन्धेन शब्दस्य प्रतिपादकत्वम्।—वृत्तिवार्तिक, पृ0 15

37 शक्यार्थ सम्बन्धो लक्षणा।—रसगंगाधर, पृ0 149